हरबर्ट स्पेंसर

- समाज एक सावयव के रूप में
- उद्विकास का नियम
- सैनिक और औद्योगिक समाज
- अभ्यास प्रश्न

समाजशास्त्र के क्षेत्र में ***अगस्त कॉम्टे*** के कार्य को आगे बढ़ाने का श्रेय ब्रिटिश दार्शनिक एवं सामाजिक विचारक हरबर्ट स्पेंसर को दिया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि ***कॉम्टे*** ने समाजशास्त्र के जिस नक्शे को बनाया, स्पेंसर ने उसमें रंग भरे। पश्चिमी संस्कृति में उनके कई विचारों का प्रवेश रूढ़िवादी बुद्धि और रूढ़िवादी पूर्वाग्रहों के रूप में हुआ है फिर भी आजकल उनकी पुस्तकों को बहुत कम पढ़ा जाता है। यही नहीं, आजकल बहुत कम व्यक्तियों को ही उनके नाम याद है। किन्तु अपने समय में ***स्पेंसर*** ने काफी ख्याति अर्जित की है, विशेषत: अमेरिका में उनकी काफी प्रशंसा हुई है।

हरबर्ट स्पेंसर का जन्म इग्लैंड के डरबी नामक स्थान पर 27 अप्रैल 1820 को हुआ। ***हरबर्ट स्पेंसर*** एक अध्यापक के पुत्र थे। उनके माता-पिता नास्तिक थे। ***कॉम्टे*** की भांति ***स्पेंसर*** ने भी गणितशास्त्र और प्राकृतिक विज्ञानों का अध्ययन किया। उनका इतिहास और अंग्रेजी का ज्ञान बड़ा कमजोर था। विश्वविद्यालय में कोई नौकरी न मिलने के कारण वे रेलवे में एक इंजीनियर बन गये। किंतु, इस पेशे में उनका मन नहीं रमा और वे पत्रकारिता के क्षेत्र में आ गये और ढेर सारा लेखन कार्य किया। कई भिन्न विषयों पर पुस्तकें लिखी। इन पुस्तकों के आधार पर ही वे विक्टोरिया काल के समाजशास्त्र के मसीहा बन गए। ***मार्क्स*** से भिन्न, उन्होंने औद्योगिक क्रांति में प्रगति के दर्शन किए। ***स्पेंसर*** ने मानव समाज की व्याख्या एक ऐसी जीवित, निरंतर बढ़ते हुए सावयव के रूप में की है जो धीरे-धीरे सरल से एक जटिल व्यवस्था का रूप ले लेता है और अपनी जटिल व्यवस्था को बनाए रखने के लिये इसमें संसाधनों के लिये अत्यधिक प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो जाती है। ***स्पेंसर*** के इन विचारों का प्रयोग बाद में अमेरिका में ***डब्ल्यू. जी. समनर*** ने किया। उनके कई विचार आजकल पुन: प्रासंगिक हो गए हैं और उदारवाद और अहस्तक्षेपवाद सम्बन्धी उनके उन्नीसवीं सदी के विचार आजकल सामाजिक और आर्थिक सिद्धांत के मूलाधार बने हुए हैं।

समाज एक सावयव के रूप में

स्पेंसर ने प्राणिशास्त्रीय या सावयवी उद्विकासीय सिद्धांत को समाज पर लागू किया है और यह निष्कर्ष निकाला कि समाज भी एक सावयव के रूप में है क्योंकि दोनों में अनेक समानताएं हैं और दोनों के उद्विकास की प्रक्रिया भी एक सी है।

स्पेंसर के मतानुसार उद्विकास की प्रक्रिया या नियम समाज पर भी लागू होता है क्योंकि समाज भी सावयव की तरह

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

एक अनिश्चित, असम्बद्ध, समानता से निश्चित, सम्बद्ध, भिन्नता में बदला है।

प्रारम्भ में या अति आदिम युग में समाज अत्यधिक सरल था। इसके विभिन्न अंग इस प्रकार घुले-मिले होते थे कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता था। एक परिवार ही सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सभी प्रकार के कार्यों को करता था। समाज केवल एक समूह मात्र था और खानाबदोश झुण्ड के रूप में घुमन्तु जीवन व्यतीत करता था। सभी व्यक्तियों का उद्देश्य केवल भोजन, आवास तथा न्यूनतम आवश्यकताओं तक ही सीमित था। इस स्तर पर कुछ भी निश्चित न था, न तो मानव-जीवन, न ही सामाजिक संगठन और संस्कृति। इस प्रकार समाज की यह अवस्था अनिश्चित, असम्बद्ध, समानता की थी।

कालान्तर में धीरे-धीरे मनुष्य के अनुभव, विचार तथा ज्ञान में उन्नति हुई और वह समूहवादी से सामाजिक बन गया। उसके सामाजिक जीवन के विभिन्न अंग स्पष्ट हो गए। उदाहरणार्थ, परिवार, राज्य, कारखाना, धार्मिक संस्था, श्रमिक-संघ, गांव, नगर आदि स्पष्ट रूप में विकसित हुए। इस विकास के दौरान जैसे-जैसे विभिन्न अंग स्पष्ट होते गए उनके कार्य भी अलग-अलग होते गए अर्थात् समाज के विभिन्न अंगों के बीच श्रम-विभाजन और विशेषीकरण हो गया। इस श्रम-विभाजन व विशेषीकरण के होते हुए भी समाज के विभिन्न अंग एक-दूसरे से पृथक् या पूर्णतया परे नहीं होते हैं। उनमें कुछ कुछ न कुछ अन्त: सम्बन्ध व अन्त:निर्भरता बनी रहती है। परिवार राज्य से सम्बन्धित तथा उस पर निर्भर है और राज्य परिवार से सम्बन्धित व उस पर निर्भर है। इसी प्रकार, किसान, धोबी, कारीगर इन सबमें एक अन्त:सम्बन्ध तथा अन्त:निर्भरता होती है। इस प्रकार समाज एक अनिश्चित, असम्बद्ध, भिन्नता में बदल जाता है।

प्राणिशास्त्रीय उद्विकास की भांति सामाजिक उद्विकास की प्रक्रिया कुछ निश्चित स्तरों से गुजरकर होती है और इसी दौरान समाज का सरल रूप धीरे-धीरे जटिल रूप धारण कर लेता है। जैसे, सावयव या शरीर का उद्विकास जन्म, बचपन, युवावस्था, प्रौढ़त्व और मृत्यु आदि स्तरों में से गुजरता है, उसी प्रकार समाज के विभिन्न पक्षों का उद्विकास निश्चित स्तरों में से गुजरता हुआ होता है। उदाहरणार्थ, सामाजिक जीवन का उद्विकास आखेटक खाद्य संग्राहक से, चरागाह की स्थिति फिर कृषि स्तर से गुजरता हुआ औद्योगिक युग में आ गया है।

स्पेंसर का मानना है कि समाज एक प्राणिशास्त्रीय व्यवस्था की भांति है और दोनों की संरचना और कार्य एक समान हैं। सावयव की भांति समाज का भी क्रमिक विकास सरल से जटिल रूप में होता है और सावयव की भांति समाज में भी कार्यों का विभाजन और संरचना के विभिन्न अंगों में अन्त:सम्बन्ध व अन्त:निर्भरता देखने को मिलती है। समाज और सावयव के बीच इस प्रकार की आठ बुनियादी समानताओं का उल्लेख स्पेंसर ने किया है–

1. दोनों का विकास धीरे- धीरे होता है और इस प्रकार आकार में वृद्धि के मामले में दोनों ही जड़ पदार्थ से भिन्न हैं।
2. दोनों में आकार की वृद्धि सरल से क्रमश: जटिल की ओर होती है।
3. दोनों में संरचना में विकास के साथ-साथ उनके विभिन्न अंग एक-दूसरे से पृथक् होते जाते हैं और प्रत्येक अंग का कार्य भी अलग-अलग हो जाता है।
4. दोनों में विभेदीकरण के साथ-साथ विभिन्न अंगों में अन्त:सम्बन्ध और अन्त:निर्भरता बढ़ती जाती।
5. इसी अन्त:सम्बन्ध के आधार पर दोनों में अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए एक संचार या वितरण व्यवस्था होती है।
6. शरीर में मस्तिष्क स्नायुओं के द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों पर नियंत्रण करता है और शरीर के सभी अंग मस्तिष्क के आदेशों का पालन करते हैं। समाज में मस्तिष्क का यह काम सरकार करती है और यातायात एवं संचार के साधनों द्वारा अपने आदेशों को जनता तक पहुंचाती है।
7. जीवित शरीर अनेक कोशिकाओं से बनता है, उसी प्रकार समाज का निर्माण अनेक व्यक्तियों द्वारा होता है।
8. शरीर की किसी इकाई के शरीर से पृथक हो जाने पर जिस प्रकार शरीर समाप्त नहीं होता उसी प्रकार समाज की किसी इकाई के समाज से अलग हो जाने से समाज का अस्तित्व मिट नहीं जाता।

उपरोक्त समानताएं होते हुए भी समाज और सावयव में कुछ आधारभूत भिन्नताएं हैं। ये भिन्नताएं स्पेंसर के मतानुसार निम्नलिखित हैं–

1. सावयवी विकास प्राकृतिक नियम के अनुसार होता है जिसमें एक निश्चित गति से सावयव विकसित होता रहता है। समाज का विकास प्राकृतिक नियम के

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

भाग-1

अनुसार न होकर मनुष्यों के प्रयत्नों के फलस्वरूप होता है और मनुष्य द्वारा उस विकास की गति तेज या धीमी की जा सकती है।

2. एक सावयव का निर्माण अनेक कोशिकाओं से होता है पर वे सम्पूर्ण सावयव में इस प्रकार घुलमिल जाते हैं कि उनका स्वतंत्र अस्तित्व सम्भव ही नहीं होता। परन्तु, यह बात समाज पर लागू नहीं होती है। समाज की कोशिकाएं व्यक्ति हैं पर उनका एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है। वे स्वतंत्रतापूर्वक सोचने, विचारने, निर्णय लेने तथा कार्य करने की क्षमता रखते हैं।

3. सावयव में चेतना शक्ति केन्द्रित होती है। इसके विपरीत, समाज में प्रत्येक अंग की पृथक चेतना शक्ति होती है।

4. सावयव में इकाइयां सम्पूर्ण की भलाई के लिए जीवित रहती हैं जबकि समाज में सम्पूर्ण सभी इकाइयों की भलाई के लिए जीवित हैं।

इस प्रकार *स्पेंसर* का जीवित शरीर की समाज से तुलना का उद्देश्य ऐसी एक व्यवस्था की ओर संकेत करना था जिसमें सावयवी व्यवस्था की भांति चेतना शक्ति केन्द्रित हो। इसके साथ ही समाज के प्रत्येक सदस्य के अन्दर पृथक चेतना शक्ति के अस्तित्व को स्वीकार कर वे वैयक्तिक स्वतंत्रता का समर्थन करते हैं और यह निष्कर्ष निकालते हैं कि व्यक्ति का कल्याण राज्य के नियंत्रणों के अभाव में भी सम्भव है।

उद्विकास का नियम

हरबर्ट स्पेंसर के उद्विकासीय सिद्धांत पर *चार्ल्स डार्विन* द्वारा प्रतिपादित प्राणिशास्त्रीय उद्विकासीय सिद्धांतों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। *डार्विन* के अनुसार प्रारम्भ में प्रत्येक जीवित वस्तु सरल होती है और उसके विभिन्न अंग इस प्रकार एक-दूसरे के साथ घुले-मिले होते हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता और न ही उसका कोई निश्चित स्वरूप होता है। पर, धीरे-धीरे उस वस्तु के विभिन्न अंग स्पष्ट तथा पृथक् हो जाते हैं और साथ ही उसका स्वरूप भी निश्चित हो जाता है। जैसे प्रारम्भ में एक बीज बहुत सरल होता है और उसके विभिन्न अंग (जैसे जड़, तना, फल, फूल आदि) अलग-अलग नहीं होते अर्थात् उसमें अभिन्न समानता होती है। परन्तु, धीरे-धीरे प्रत्येक अंग स्पष्ट हो जाता है और उसका अलग-अलग काम बंट जाता है। पर, इस विभिन्नता या श्रम-विभाजन से कोई भी अंग दूसरे से पूर्णतया पृथक् नहीं होता है और उनमें सदैव अन्तःसम्बन्ध और अन्तःनिर्भरता बनी रहती है। उद्विकास की यह प्रक्रिया निरन्तर जारी रहने वाली एक प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया के दौरान प्राणी में कुछ न कुछ परिवर्तन होता रहता है। प्रकृति में संघर्ष निरन्तर रूप में चलता रहता है और जो भी इस संघर्ष में दुर्बल या अयोग्य होते हैं, उन्हें प्रकृति समाप्त करने के लिए चुन लेती है अर्थात् उन पर प्राकृतिक चयन का नियम लागू होता है। इस प्रकार के चयन या प्रवरण के द्वारा समस्त अयोग्य प्राणी नष्ट हो जाते हैं और केवल सबसे योग्य प्राणी ही बचे रहते हैं

स्पेंसर ने अपने उद्विकासीय नियम में बताया है कि भौतिक जगत पदार्थ और शक्ति के सम्मिलन से बना है और ये दोनों अपने अस्तित्व के लिए एक दूसरे पर आधारित हैं। शक्ति सदैव गतिमान रहती है और कभी इसका विनाश नहीं होता है केवल शक्ति के स्वरूप में अन्तर आ जाता है। उसी प्रकार, पदार्थ का भी विनाश नहीं होता केवल उसका रूप बदल जाता है। *स्पेंसर* के अनुसार उद्विकास के तीन प्रमुख सिद्धांत हैं। प्रथम, शक्ति शाश्वत है। द्वितीय, पदार्थ का विनाश नहीं होता और तृतीय, प्रत्येक चीज में एक गति होती है। इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर *स्पेंसर* का कहना है कि प्रारम्भ में प्रत्येक पदार्थ एक अनिश्चित, असम्बद्ध समानता की स्थिति में होता है अर्थात् उनके विभिन्न अंग एक-दूसरे से घुले-मिले होते हैं। सभी पदार्थ आरम्भ में एक स्वरूपहीन ढेर मात्र होता है पर यह ढेर अंतर्निहित शक्ति के कारण गतिमान होता है जिसके कारण समय बीतने के साथ-साथ धीरे-धीरे पदार्थ का स्वरूप बदलता जाता है और उसके विभिन्न अंग स्पष्ट व पृथक रूप में प्रकट होते जाते हैं। पर, इस पृथकता या भिन्नता के होते हुऐ भी विभिन्न अंगों में अन्तः सम्बद्धता व अन्तःनिर्भरता बनी रहती है अर्थात् उद्विकास के दौरान पदार्थ एक अनिश्चित, असम्बद्ध, समानता से निश्चित, सम्बद्ध, भिन्नता में बदल जाता है।

उपरोक्त आधार पर *स्पेंसर* ने उद्विकास को इस प्रकार परिभाषित किया है-"उद्विकास पदार्थ का समन्वय तथा उससे सम्बन्धित गति है जिसके दौरान पदार्थ एक अनिश्चित, असम्बद्ध, समानता से निश्चित, सम्बद्ध, भिन्नता में बदलता है।"

स्पेंसर के मतानुसार विकास के आरम्भ में जो जीव था उसमें जीवन के अतिरिक्त किसी प्रकार का रूप या आकार नहीं था। लेकिन धीरे-धीरे उसमें रूप उत्पन्न हुआ और उद्विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप ही कालान्तर में जीव-जगत और

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

वनस्पति-जगत् एक-दूसरे से पृथक हो गए और उसी प्रक्रिया के कारण मनुष्य-जाति का उद्विकास बन्दर जैसे पशुओं से हुआ।

स्पेंसर ने प्राकृतिक प्रवरण के नियम को मानव-समाज पर भी लागू किया और निष्कर्ष निकाला कि अस्तित्व के लिए संघर्ष मनुष्य तथा अन्य जीवित प्राणी के बीच तथा स्वयं मनुष्य व मनुष्य के बीच निरंतर होता रहता है और इस संघर्ष में केवल सबसे उपयुक्त या योग्य प्राणी ही जीवित रहते हैं। इस प्रकार उद्विकास की प्रक्रिया को चेतन-जगत पर लागू करके **स्पेंसर** ने योग्यतम के जीवित रहने के सिद्धांत को प्रस्तुत किया और कहा है कि प्राकृतिक नियम के अनुसार केवल वही जीव जीवित रह सकते हैं जिनमें अपने अस्तित्व को बनाए रखने की शक्ति होती है। इसके अतिरिक्त, प्रकृति यह मांग करती है कि प्रत्येक जीव अपना अनुकूलन प्रकृति के साथ करें। जो प्राणी अपने कुछ दोषों के कारण प्रकृति के साथ सफलतापूर्वक अनुकूलन नहीं कर पाते हैं, प्रकृति उन्हें मार डालने के लिए चुन लेती है अर्थात् प्राकृतिक नियम के अनुसार उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

सैनिक और औद्योगिक समाज

स्पेंसर ने सामाजिक और राजनीतिक संगठन के ऐतिहासिक विकासवाद का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है और कहा है कि समाज, सर्वप्रथम एक अभिन्न और समरूप खानाबदोशी झुंड के रूप में था। सार्वजनिक सत्ता और राजनीतिक संगठन का प्रारम्भ युद्धकाल में नेता की अधीनता के अन्तर्गत समूह द्वारा कार्य किए जाने के फलस्वरूप हुआ। नेता के पास अन्य सदस्यों की अपेक्षा अधिक गुण एवं कार्यकुशलता होती थी। यह गुण ईश्वर द्वारा प्रदत्त प्राकृतिक कुशलता मानी जाती थी और इस प्रकार नेता के शासन को एक अलौकिक स्वीकृति मिल जाती थी।

समाज की जटिलता के बढने के साथ-साथ युद्ध की बढती अवधियों और सैनिक क्रियाओं के बेहतर संगठन की आवश्यकता ने इस स्थायी युद्ध-नेता को एक मुखिया या राजा के रूप में विकसित किया। इसके कारण सैनिक संगठन में स्थायीपन आया किन्तु इससे समस्या का पूर्ण समाधान नहीं हुआ। युद्ध-नेता की मृत्यु के पश्चात् दूसरे युद्ध-नेता के चुनाव की समस्या उत्पन्न हुई। इस समस्या के निदान के रूप में वंशानुगत नेतृत्व सिद्धांत का विकास हुआ और इस वंशानुगत नेता, मुखिया या राजा को शासन-प्रबन्ध के मामले में सलाह देने के लिए परामर्शदात्री और प्रतिनिधि समितियों का समान्तर उद्विकास हुआ जिन्होंने बाद में औपचारिक परिषदों और विधानसभाओं का रूप धारण किया।

स्पेंसर के अनुसार सैनिक क्रियाओं के विकास के कारण विभिन्न समुदायों में विभक्त व्यक्तियों का एकीकरण हुआ। छोटे-छोटे खानाबदोशी झुंडों ने एक-साथ मिलकर एक बड़े समूह का निर्माण किया। इसके फलस्वरूप समाज का एकीकरण हुआ। इस प्रकार सामाजिक विकास के साथ-साथ समाज में विभेदीकरण की प्रक्रिया भी क्रियाशील हुई। इस विभेदीकरण के फलस्वरूप समाज में धनी शासकों, सामान्य स्वाधीन लोगों, भूमिदासों और दासों के वर्गों का निर्माण हुआ। जब राजशक्ति किसी शासक वर्ग के हाथ में केन्द्रित हो गई और उसका क्षेत्र बढ़ गया है तथा वह अधिक बड़े भू-भाग पर लागू हुई तो उसके कुशलतापूर्वक संचालन करने के लिए शासकीय उपकरण का विकास हुआ जैसे मंत्रिमण्डल, स्थानीय संस्थाएं, न्यायिक संस्थाएं, राजस्व और सैनिक संगठन आदि।

आरम्भ में राज्य अपना समस्त ध्यान सैनिक संगठन, विजय और प्रादेशिक विस्तार के ऊपर केन्द्रित करता था समय बीतने के साथ जब वह अधिक स्थायी हो गया तो उसका ध्यान अधिकाधिक उद्योग के विकास की ओर हुआ है। उस अवस्था में राजनीतिक विकासवाद की प्रक्रिया सैनिक राज्य से औद्योगिक राज्य में रूपान्तरित हो गई है। **स्पेंसर** ने औद्योगिक समाज को सैनिक समाज की अपेक्षा अधिक उपयुक्त माना क्योंकि इसके अन्तर्गत मनुष्य को नैतिक विकास का अवसर प्राप्त होता है। स्पेंसर के अनुसार आदर्श स्थिति तो वह होगी जब उद्योगवाद के साधनों को मानव-चरित्र एवं नैतिक आचार को पूर्ण विकसित करने की दिशा में लागू किया जा सकेगा और मानव-चरित्र में सामाजिकता के गुण विकसित हो जाएंगे तथा उसके ऊपर राज्य जैसे बाहरी नियंत्रण की आवश्यकता नहीं रहेगी।

इस प्रकार **स्पेंसर** ने सैनिक समाज और औद्योगिक समाज के दो रूपों की कल्पना की है। सैनिक समाज में क्रियात्मक शक्तियों को सैनिकों के लिए सुख-सुविधाओं को जुटाने के उद्देश्य से नियोजित किया जाता है और समाज में सैनिक क्रियाकलापों का बोलबाला होता है। दूसरी ओर औद्योगिक समाज में सैनिक शक्ति का प्रयोग केवल आन्तरिक शान्ति व सुव्यवस्था को बनाए रखने तथा बाहरी आक्रमणों से रक्षा करने के लिए किया जाता है। इसके अलावा, सैनिक समाज में सेनाध्यक्ष राज्य का शासक होता है और इसलिए अनुशासन की व्यवस्था लागू की जाती है। व्यक्तिगत सम्पत्ति या उत्पादनों के

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार को सहन नहीं किया जाता है, जनता को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती, धर्म की भी एक सैनिक प्रवृत्ति होती है और व्यक्ति को स्वयं के लिए नहीं, अपितु समाज के लिए जीवित रहना पड़ता है। दूसरी ओर, औद्योगिक समाज में व्यवस्था तथा न्याय के अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वंतत्रता के सिद्धांत को पूर्णतया मान्यता प्रदान की जाती है। सरकारी हस्तक्षेप घटता है स्थानीय सरकार को अधिकाधिक शक्ति मिलने के लिए राजनीतिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण होता है, जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों द्वारा सरकार का संगठन होता है, धार्मिक स्वतंत्रता होती है, व्यापार और उद्योगों के क्षेत्र में प्रतियोगिता व्याप्त होती है तथा राजकीय क्रियाकलापों के आलोचकों को सहन किया जाता है। राजकीय नियंत्रण केवल निषेधात्मक रूप में होता है इसका उद्देश्य व्यक्तिगत स्वतंत्र में अनावश्यक हस्तक्षेप को दूर करना होता है। इस रूप में औद्योगिक समाज परिवर्तन के लिए अधिक अनुकूल होता है जहां नैतिकता के विकास का पूरा अवसर प्राप्त होता है।

अभ्यास प्रश्न

- स्पेंसर के सावयवी सिद्धांत की विवेचना कीजिए।
- हरबर्ट स्पेंसर के उद्विकासीय सिद्धांत की विवेचना कीजिए।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner